प्रस्तावना

प्रमाणिकता एवं विश्वसनीयता के साथ भारतीय इतिहास की संरचना में अभिलेखों का सर्वाधिक महत्व पुरातात्विक स्रोत के रूप में उल्लेखनीय है । विद्वानों ने विगत कई वर्षों से इस दिशा में अथक प्रयास द्वारा अपने अध्ययन से भारतीय इतिहास के अध्येताओं को प्रचुर मात्रा में आधार सामग्री उपलब्ध करायी है । किन्तु यह एक विस्तृत विषय है एक साथ इसका सांगोपांग अध्ययन संभव नहीं है । अस्तु पृथक-पृथक ऐतिहासिक पक्षों के सन्दर्भ में ही भारतीय अभिलेखों का वैज्ञानिक रीति से गवेषणापूर्ण अध्ययन अधिक उपयोगी होगा तथा उसमें निहित ज्ञानराशि का यथास्थान सही रीति से विश्लेषण कर लाभ उठाया जा सकता है । विद्वानों के श्लाघनीय प्रयास के बावजूद भी इतिहास के कुछ पक्ष ऐसे रह गये हैं जिनका अध्ययन अभिलेखों के आधार पर समुचित ढंग से नहीं हो सका है । अभिलेखों में उन पक्षों से सम्बन्धित सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । अभिलेख जहाँ सांस्कृतिक पक्षों के अध्ययन के लिए उपयोगी हैं वहीं राजव्यवस्था के विविध पक्षों से सम्बन्धित सूचनाओं से भी भरे पड़े हैं । सम्प्रति जो प्राचीन भारत के अभिलेख उपलब्ध हैं वे अधिकांश राजाओं, उनके अधिकारियों तथा दरबारी कवियों (प्रशस्तिकारों) द्वारा उत्कीर्ण कराये गये हैं । अतः स्वाभाविक रीति से तत्काल की राजव्यवस्था से सम्बन्धित राज्यादर्श, विधि-विधान एवं प्रशासनिक व्यवस्था का उल्लेख उनमें मिलता है । चूँकि अधिकांश अभिलेख राज्याश्रय में उत्कीर्ण हुए अतः उनमें राजतंत्र सम्बन्धित तथ्यों की प्रचुरता दृष्टिगत होती है । विविध उद्देश्यों से अभिलेख उत्कीर्ण कराये गये थे, जिनके उत्कीर्णन हेतु विभिन्न प्रकार की सामग्रियों का उपयोग किया गया । फलतः अभिलेखों में विविधताएँ मिलती हैं । अधिकांश अभिलेख राजाश्रय में उत्कीर्ण हुए । इनकी परम्परा मौर्य शासन काल से अनवरत सम्पूर्ण प्राचीन भारत में विभिन्न राजवंशों के काल तक चलती रही । समय-समय पर परिवर्तित शासन सिद्धान्त और व्यवस्था का व्यवहारिक स्वरूप तथा उनमें अन्तर्निहित राजनीतिक विचार अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है । स्पष्ट है

कि अभिलेख इतिहास अध्ययन के ऐसे प्रामाणिक साक्ष्य हैं जिनसे भारत के विभिन्न राजवंशों का इतिहास ज्ञात होता है । उनके राज्यादर्शों और शासन के प्रमुख विभागों की जानकारी उपलब्ध होती है । आज भी ऐसे महत्व के शासन-पत्र जो नीतिगत और व्यवहारिक प्रशासनिक निर्देशों से सम्बन्धित हुआ करते थे । प्रस्तर खण्डों, स्तम्भों, ताम्र पत्रों आदि पर उत्कीर्ण उपलब्ध हैं । यद्यपि कि इन अभिलेखों में राजनीतिक विचार एवं राजव्यवस्था से सम्बन्धित तथ्य कहीं विस्तृत रूप में और कहीं सांकेतिक रूप में ही आये हैं, फिर भी राजशास्त्र से सम्बन्धित पुस्तकों में जो तथ्य अंकित हैं, उनकी पुष्टि में यह अत्यधिक सहायक सिद्ध होते हैं । जैसे कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में उल्लिखित राजनीतिक विचारों को मूर्तिमान करने या स्पष्ट करने अशोक के लेख कितने सहायक सिद्ध हुए हैं, यह किसी विद्वान से छिपा नहीं है ।

मौर्य प्रशासन की व्यवस्था और उसके मूल में अन्तर्निहित वैचारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान अशोक के अभिलेखों से मिलता है । यद्यपि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तत्कालीन शासन पद्धति का विस्तृत विवरण अंकित है तथापि अशोक का पाँचवा शिलालेख ही धर्म महामात्रों की नियुक्ति के नूतन प्रयोग और उसकी पृष्ठभूमि में अशोक के परिवर्तित राज्यादर्श के विचार को आलोकित करता है । तीसरे शिलालेख में राज्जुक, प्रादेशिक, युक्त नामक पदाधिकारियों को प्रजाहित में राज्य के अपने कार्यक्षेत्र में भ्रमण करने और कैम्प करने का निर्देश दिये गये हैं । इस व्यवस्था में " प्रजाहिते हित राज्ञः " का भाव समाविष्ट है ।

अशोक के अभिलेखों में जहाँ उसकी राज्य सीमा का उल्लेख है वहीं उसके द्वारा किये गये प्रशासनिक सुधारों तथा उसके मूल में अन्तर्निहित राजनीतिक विचारों का भी परिज्ञात होता है । उसकी प्रशासनिक इकाईयों के परिचय से उसके सुव्यवस्थित शासन पर प्रकाश पड़ता है । अशोक के गौण शिलालेख (माइनर रक एडिक्ट)इस तथ्य से हमें अवगत कराते हैं कि सम्पूर्ण साम्राज्य को चार भागों में विभक्त कर सुशासन की दृष्टि से सुविधानुसार विकेन्द्रीकृत किया गया था ---

1. उत्तरापथ -- राजधानी तक्षशिला ।
2. पश्चिमी प्रदेश -- राजधानी उज्जैन ।

3. दक्षिण प्रदेश -- राजधानी सुवर्णगिरि ।
4. पूर्वी प्रदेश -- राजधानी कौसल ।

पाटलिपुत्र को सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था । अशोक विभिन्न लेखों से पृथक-पृथक क्षेत्रों के महामात्यों की जानकारी प्राप्त होती है जैसे - कौसाम्बी स्तम्भ लेख से कोसंबिय महामात्र, धौली के पृथक शिलालेख से तोसलिय महामात्र तथा उजेनिते पि चु कुमाले, जौगढ़ लेख से समापायं महामता तथा सिद्धपुर शिलालेख से सवर्णगिरिते अययुतत महामातानं आदि ।

(क) उद्देश्य --

मौर्येतर राजवंशों के शासन काल जैसे शुङ्ग, सातवाहन, शक कुषाण आदि में भी यात्किंचित अशोक के समय के राज्यादर्श एवं राजनीतिक विचार विद्यमान थे । इनके शासन के स्वरूप का परिज्ञान अभिलेखों से ही होता है । कुछ तो शासक ऐसे हैं जिनके इतिहास एवं शासन सिद्धान्त व्यवस्था को जानकारी का स्रोत अभिलेखों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । कलिंग राज खारवेल का हाथी गुम्फा अभिलेख समुद्रगुप्त को प्रयाग प्रशस्ति, रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख आदि ऐसे ही उदाहरण हैं

प्रशस्ति परक अभिलेख एवं मुद्रालेख दो प्रकार की राजनीतिक - विचारधारा के आधार पर प्राचीन भारत में दो प्रकार के शासन तंत्र प्रजातंत्र एवं राजतंत्र के अस्तित्व से अवगत कराते हैं । यह भी अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कालांतर में विशेष रूप से गुप्त शासन काल में प्रजातंत्र राजतंत्र में विलीन हो गया । राजाओं के शासनादेशों, शान्तिकाल एवं युद्धकाल में उनकी नीतियों, - न्यायिक, प्रशासनिक एवं अन्य व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकार व कर्तव्यों का सांगोपांग परिचय भी अभिलेखों से ही मिलता है ।

कुछ अभिलेख अतिशयोक्ति पूर्ण शैली में भी प्रशस्ति-कारकों द्वारा अपने स्वामी को प्रसन्न रखने की दृष्टि से उत्कीर्णित हुए हैं, ऐसी स्थिति में इनका अध्ययन नीर-क्षीर विवेकी दृष्टि से अपेक्षित है । इनके अध्ययन में सतर्कता एवं

विवेचनात्मक दृष्टि अपरिहार्य है । अभिलेख इतिहास अध्ययन में वास्तविक स्थित प्रकट करते हैं इसलिए इनका महत्व अन्य प्रमाणों की अपेक्षा अधिक है ।

﴾ख﴿ अध्ययन के स्रोत के रूप में अभिलेख --

प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों के अध्ययन के स्रोत के रूप में पुरातात्विक साक्ष्य और उसमें अभिलेखों का अत्याधिक महत्व है । विभिन्न राजवंशों के शासकों के शासन से सम्बन्धित राजनीतिक दर्शन किंवा विचार एवं उसका व्यवहारिक धरातल पर क्रियान्वयन का जो विश्वसनीय विवरण अभिलेखों से उपलब्ध होता है । वह अन्य किसी स्रोत से संभव नहीं दीखता । पाश्चात्य विद्वान के भारतीय इतिहास दृष्टि के सम्बन्ध भ्रामक विचार एवं आरोपों को आभिलेखिक साक्ष्य ही मिथ्या सिद्ध करते हैं ।

प्राचीन भारतीय शासकों की उपलब्धियों, शासन व्यवस्था को दृष्टि से दी गयी उनकी आज्ञाएँ, निर्देशों, जन-कल्याणकारी कार्यों का - विवरणादि शिलाखण्डों, प्रस्तर एवं लौह स्तम्भों, गुहाभित्तियों तथा ताम्रपत्रादि पर उत्कीर्ण अभिलेखों पर उत्कीर्णित हैं । अभिलेखों का महत्व उस स्थिति में और अधिक बढ़ जाता है जब ऐसे शासकों की उपलब्धियाँ और शासन तथा भारतीय - इतिहास के उन घटनाओं के बारे में हमें जानकारी प्राप्त होती है जिनके बारे में अन्य समस्त स्रोत गौण हैं । कुछ ऐसी भी लिखित परम्पराएँ हमें विस्तृत साहित्यिक विवरणों से ज्ञात होता है जिनकी ऐतिहासिकता और प्रमाणिकता की पुष्टि अभि-लेखों में प्राप्त तथ्यों से होती है ।

अभिलेखों से ज्ञात तथ्यों की विश्वसनीयता इसलिए अधिक महत्व रखती है ये जिन घटनाओं एवं शासन व्यवस्थाओं किंवा राजनीतिक विचारों से संबद्ध होते हैं वे उसी काल के होते हैं । इसकी जाँच हमें लिपिगत एवं भाषागत विशेषताओं के आधार पर कर लेते हैं । दरबारी कवियों, प्रशस्तिकारों एवं अन्य अधिकारी जो अभिलेखों के उत्कीर्णन से सम्बद्ध रहे वे अपने राजकीय संरक्षकों का वर्णन करते समय ..

उनके पूर्वजों तथा उनके समसामयिक दरबारी कवियों का भी उल्लेख किये हैं । चूंकि वे अपेक्षाकृत सन्निकट के होते थे इसलिए उन्हें भूतकाल की घटनाओं का विवरण भी सहजता से उपलब्ध हो जाता था । उदाहरण के रूप में रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख को उद्धृत किया जा सकता है जिसमें उक्त झील के निर्माण का प्रारम्भिक इतिहास भी अंकित है । सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त मौर्य के राष्ट्रीय पुष्पगुप्त ने इसका निर्माण कराया था । इसके पश्चात अशोक की आज्ञा से यवनराज तुषाष्फ ने इस झील से सिंचाई की सुविधा को ध्यान में रखते हुए नहरें निकलवाया ।

अशोक के अभिलेख उसके शासन सिद्धान्तों, सुशासन सम्बन्धी सुधारों, जनकल्याणकारी कार्यों और अन्य क्रियाकलापों का विवरण प्रस्तुत करते हैं । साथ ही पड़ोसी राजाओं के नाम तथा उनके शासन व्यवस्था से भी किंचित अवगत कराते हैं ।

हाथीगुम्फा अभिलेख कलिंग राज खारवेल जैसे प्रतापी शासक के बारे में विधिवत व्यवस्थित जानकारी उपलब्ध कराता है । जिसके अन्य समस्त स्रोत मौन हैं । यह अभिलेख खारवेल के पूर्वजों का नामोल्लेख करते हुए उसके प्रारम्भिक - जीवन, युवराज काल, राज्यारोहण के बाद के क्रियाकलापों का शासन वर्ष के क्रमानुसार विवरण प्रस्तुत करता है । खारवेल की प्रजारंजन नीति, साम्राज्यवादी नीति के साथ-साथ उसकी उदारता एवं धर्म-परायणता की जानकारी भी इस लेख से प्राप्त होती है । ऐसे ही समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के दिग्विजयों, व्यक्तित्व तथा अन्तर्देशीय एवं विदेशी राजनयिक सम्बन्धों का विस्तरस: परिज्ञान होता है । स्कन्दगुप्त के भीतरी एवं जूनागढ़ अभिलेख उसकी उपलब्धियों के साथ-साथ राजनैतिक स्थितियों का भी परिचय प्रदान करते हैं । मन्दसोर अभिलेख गुप्त साम्राज्य के ह्रासोन्मुख काल खण्ड का एक महत्वपूर्ण अभिलेख है यशोधर्मन के शासन एवं उपलब्धियों से अवगत कराता है ।

प्राचीन भारत की शासन प्रणाली के अध्ययन की दृष्टि से अभिलेख विशेष महत्व के सिद्ध हुए हैं । प्राय: अधिकांश अभिलेख तद्- तत्काल के शासन तंत्र एवं उसके स्वरूप के सम्बन्ध में हमें विवरण उपलब्ध कराते हैं । अशोक के अभिलेख राज्य

के पदाधिकारियों, राजा की शासन-नीति, जनकल्याणकारी कार्यों के सम्बन्ध में राजा की दृष्टि एवं उसके द्वारा कृत कार्यों की जानकारियों से भरे पड़े हैं। गुप्त अभिलेख इस आशय के तथ्यों की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। अभिलेखों में राज्य कर्मचारियों के वर्णन जो उपलब्ध होते हैं वे प्राय: संकेत मात्र में ही हैं किन्तु राजशास्त्र के ग्रन्थों में उनकी नियुक्ति, योग्यता, अधिकार एवं कर्तव्यादि के बारे में दिये गये विवरणों से विस्तरत: जानकारी प्राप्त हो जाती है। राजशास्त्र के ग्रन्थों से उपलब्ध तथ्यों तथा अभिलेखिक तथ्यों के तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से विशेष महत्व के हैं कि जहाँ राजशास्त्र के ग्रन्थ शासन प्रणाली के सैद्धान्तिक पक्ष से अवगत कराते हैं वहीं - अभिलेख उसके व्यवहारिक स्वरूप को प्रत्यक्षत: हमारे सम्मुख उद्घाटित करते हैं।

दक्षिण भारत में तन्जौर के निकट " नालूर " नामक स्थान से प्राप्त - अभिलेख तथा मद्रास के " मेरूर " से प्राप्त अभिलेख शासन प्रणाली की जानकारी की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। मध्ययुगीन ग्राम शासन व्यवस्था का स्पष्ट चित्र इन अभिलेखों में प्राप्त होता है। कतिपय अभिलेख ही हमें प्राचीन भारत में संयुक्त शासन तथा नारी शासकों से अवगत कराते हैं। सातवाहन लेख शासन पर राजमाताओं के वर्चस्व को अभिप्रमाणित करते हैं। नासिक गुहा लेखादि इसके उदाहरण स्वरूप उल्लेख किये जा सकते हैं। रिठपुर एवं पूना ताम्रपत्र अभिलेख वाकाटक राजवंश के सत्ता काल एवं क्षेत्र में प्रभावती गुप्ता के लगभग 20 वर्षों के शासनावधि का संकेत देते हैं। प्रभावती गुप्ता गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री एवं वाकाटक नरेश रुद्रसेन की महारानी थी जिसने अपने पति के मृत्यु के उपरान्त अल्पवयस्क राजकुमारों के संरक्षिका के रूप में शासन कार्य का संचालन किया था।

अभिलेखों से आन्तरिक शासन व्यवस्था के साथ ही वैदेशिक नीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से जानकारी प्राप्त होती है। अशोक के त्रयोदश शिलालेख में उन विदेशी राजाओं के उल्लेख हैं जिनके राज्य में मौर्य शासक द्वारा दूत भेजे गये थे -- " सो च पुने लधो देवनंप्रियस इह च सवेषु अषणु पि योजन शतेष यथ अंतियोको नम योन रज परं च तेन अंतियोकेन चतुरे रजनि तुरमये नम अंतिकिनि नम मक नम अलिक सुदरो नमनिच चोड - पंड अब तब पणिययोन क वोधेषु सवत्र देवानं प्रियस ...

अनुशासित अनुवर्तित । यथ पि देवनं प्रियस दुत न ब्रचंति आदि ।"[1] अशोक की यह प्रबल इच्छा थी कि उसके दूत निर्बाध गति से विदेशों में धर्म प्रचार करते हुए विचरण करें । यही कारण है कि मौर्य शासकों ने अपने राज्य में विदेशी राजदूतों को हर संभव सुविधाएँ सुलभ कराने की नीति का अनुपालन करते रहे हैं । अशोक ने जो जन-कल्याण आदि के कार्य अपने राज्य सीमा में किया उसी प्रकार के कार्य उसने सीमा पर स्थित अन्य राज्यों और विदेशी राजाओं के राज्यों तक में भी सम्पादित कराया इसका स्पष्टतः उल्लेख अशोक के द्वितीय गिरनार शिलालेख में किया गया है ।[2]

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की जानकारी मौर्योत्तर अभिलेखों से भी प्राप्त होती है । प्रथम शादी ई॰पू॰ के बसनगर गरुड़ध्वज स्तम्भ अभिलेख से ज्ञात होता है कि इण्डो-ग्रीक शासक अंतलिकित का राजदूत हेलियोडोरस विदिशा में भागभद्र के राजदरबार में आया था ।[3] इसी अभिलेख से यह भी प्रतिध्वनित होता है कि इस यूनानी राजदूत ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर वैष्णव धर्मानुयायी हो गया था, उसी की स्मृति में गरुड़ध्वज स्तम्भ स्थापित हुआ था । क्षत्रप शासन प्रणाली जो यूनानी शक आक्रान्ताओं की देन ज्ञात होती है । अभिलेखों से ज्ञात होता है । यद्यपि भारतीय शासन प्रणाली में पहले से केन्द्र शासन के अन्तर्गत प्रान्तों की व्यवस्था थी और युवराज एवं अन्य उसके प्रमुख नियुक्त किये जाते थे । यह प्रथा मौर्य शासन काल से ही ज्ञात है । अभिलेख निरन्तर इसका उल्लेख करते आये हैं । ई॰पू॰ द्वितीय शताब्दी का तंजोर से प्राप्त अभिलेख, कुषाण राजाओं के अभिलेख इस प्रकार की सूचनाएँ प्रदान करते है जिनसे विदेशी शासकों के भारतीयकरण की पुष्टि होती है ।

प्राचीन भारत के खोये पक्षाकी जानकारी प्रदान कर अभिलेख भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में अपनी महती भूमिका प्रस्तुत करते है । अभिलेख ऐतिहासिक घटनाक्रमों और शासन विधायों की प्रमाणिक एवं विश्वसनीय ज्ञान उपलब्ध कराते हैं । कतिपय राजकीय अभिलेख राजाओं के शासन वर्षों की जानकारी प्रदान करते हैं । कुछ संवत् विदेशी शासकों द्वारा भी प्रयोग में लाये गये हैं । कुछ अंकित तिथियाँ ज्योतिष-गणना के धरातल त्रुटिपूर्ण ज्ञात होते है । इन त्रुटियों के लिए या तो लेख के ...

1· डॉ॰ वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेख, प्रथम भाग, पृ॰ 26

2· द्वितीय गिरनार शिलालेख ।

3· " हेलिओदोरण भागवतेन दियसपुत्रेण तखख शिलाकेन योन दूतेन आगतेन ।"

उत्कीर्ण कर्ता स्वयं या ज्योतिषविद् उत्तरदायी है ।[1]

प्रशास्तिपरक अभिलेखों के अधिकांश लेखक राजदरवारी होते थे । इनके अभिलेख प्रशास्तियों को उत्कीर्णि-त करते समय इतने अतिशयोक्ति पूर्ण कर दिये हैं कि सामंतों तक को सार्वभौम शासक की कोटि में रेखांकित कर दिये हैं ।[2] कतिपय अभिलेखों के अन्तर्गत शासकों या राजाओं को सम्पूर्ण पृथ्वी का विजेता या स्वामी बताया गया है, इसका अभिप्राय चक्रवर्ती क्षेत्र से ग्रहण किया जा सकता है ।[3] यत्र-तत्र अशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित स्टोनकटर के उत्कीर्णन कार्य से भी अभिलेखों में अशुद्धियाँ दृष्टिगत होती हैं । इन अशुद्धियों के बावजूद भी अभिलेखों का इतिहास के पुनर्निर्माण में अत्यधिक महत्व को रेखांकित करने के लिए वाध्य होना पड़ता है ।

अभिलेखों के अध्ययन की प्रक्रिया का भी अपना एक इतिहास है । इस पर प्रकाश डालने का भी मोह सवरण नहीं कर सकता । सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने 1837 ई० में भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में आभिलेखिक साक्ष्यों के व्यवस्थित अध्ययन की ओर ध्यान आकर्षित किया । अधिकांश अभिलेख " एशियाटिक रिसर्चेज " और " " जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी " में कलकत्ता से प्रकाशित हुए । वरगीस के द्वारा इण्डियन एण्टीक्वेरी का प्रकाशन 1872 ई० से प्रकाशनहुआ । ऐसे ही "मद्रास जर्नल ऑफ लिट्रेचर एण्ड साइंस "," दि जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी §लंदन§ आदि पत्रिकाओं में भी अभिलेख प्रकाशित किये गये । आर्कियालिजिकल ऑफ इण्डिया के द्वारा भी अभिलेखों का अन्वेषण और प्रकाशन का कार्य 1861 ई० से प्रारम्भ हो गया ।

19वीं शादी के अन्त में एलेक्जेण्डर कनिंघम ने अशोक के अभिलेखों को एक पुस्तक में संग्रहीत कर प्रकाशित किया । कनिंघम आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के प्रथम निदेशक थे । भारत सरकार के एपिग्रेफिस्ट जे०एफ०फ्लीट ने गुप्तकालीन अभिलेखों को सम्पादित किया । इसके पश्चात् आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के द्वितीय

---

1. तुलनीय -- इन्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, भाग -28, पृ० 342 से आगे ।
2. तुलनीय -- एपीग्रेफी इण्डिका, भाग - 28, पृ० 186
3. " जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग-5, 1939, पृ०407 अ
   डॉ० डी०सी० सरकार - " स्टडीज इन दि ज्योग्राफी ऑफ ऐन्सियन्ट एण्ड
   - मेडिवल इण्डिया ", पृ० 2 आगे ।

डाइरेक्टर के रूप में " एपिग्रेफिया इण्डिका " नामक जर्नल का प्रकाशन प्रारम्भ किया ।

1887 से 1921 ई॰ तक मद्रास सरकार ने " एनुअल रिपोर्ट " का प्रकाशन भी अभिलेखों के प्रकाशन की दृष्टि से काफी महत्व का रहा । इसमें विशेषकर दक्षिण के अभिलेखों का संग्रह है । ऐसे ही एफ॰ कोलहर्न के द्वारा सम्पादित इन्सक्रिप्सन ऑफ नार्दन इण्डिया " भी महत्वपूर्ण है । विदेशी विद्वानों के अतिरिक्त भारतीय विद्वानों में भगवान लाल इन्द्रजीत, रामगोपाल भण्डारकर, एच॰पी॰शास्त्री, वी॰वेनकय्या, एच॰ कृष्ण स्वामी, एम॰जी॰ मजूमदार, एन॰पी॰चक्रवर्ती, डी॰डी॰ सरकार, डॉ॰ राजबली पाण्डेय आदि अन्यान्य विद्वानों की अभिलेखों के अध्ययन में उल्लेखनीय योगदान है ।

साहित्यक - स्रोत --

प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से अभिलेखों के अन्त:साक्ष्यों पर आधारित है । किन्तु यथास्थान आवश्यकतानुसार विषय को अधिक व्याख्यायित करने की दृष्टि से ऐसे राज्यशास्त्रीय ग्रन्थों का भी सहारा लिया गया है जिनकी प्रासंगिकता आवश्यक समझी गयी है । ऐसे ग्रन्थों का भी स्रोत के रूप में उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है

वैदिक वाङ्॰मय --

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य धर्म का प्रतिपादन मुख्य रूप से करता है, किन्तु यत्र-तत्र प्रसंगवस तत्कालीन राजनीतिक विचार एवं संस्थाओं के बारे में भी हमें जानकारी प्रदान करता है । सभा, समिति, पौर - जनपद नामक राजनीतिक संस्थाओं एवं राजपद का निर्वाचन, राज्याभिषेक संस्कार आदि विषयक राजनीतिक विचार भी हमें वैदिक ग्रन्थों से ज्ञात होते हैं । वेद, ब्राह्मणा-ग्रन्थ, आरण्यक एवं उपनिषद मूलत: वैदिक वाङ्॰मय में अन्तर्निहित हैं ।

वेदांग --

आठवीं शदी ई॰पू॰ से व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष विषयक गंभीर अध्ययन का प्रारम्भ हो चुका था । इसी कालखण्ड से राज्यशास्त्र विषयक चिन्तन का श्रीगणेश भी ज्ञात होता है । सातवीं शदी ई॰पू॰ में अनेकानेक छोटे-छोटे

जनपद एवं महाजनपद राज्यों की स्थापना प्रारम्भ हो गयी थी । राजा अपने धर्म-गुरुओं और मंत्रियों से राजनीतिक मामलों में विचार विमर्श का शासन सत्ता का संचालन करने लगे थे । फलत: राजनीति विचारों एवं संस्थाओं का उदय एवं विकास प्रारम्भ हो गया । पाणिनि की अष्टाध्यायी मूलत: व्याकरण का ग्रन्थ होते हुए राजनीतिक संस्थाओं और तद्विषयक विचारों के अध्ययन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्रोत ज्ञात होता है ।

रामायण एवं महाभारत महाकाव्य --

रामायण ऐक्ष्वाकु वंश के राजाओं की सफलताओं का वर्णन करता है । रामायण के अनुसार राम ऐसे प्रथम आर्य सम्राट थे जिन्होंने लंका विजय कर अपने चक्रवर्ती साम्राज्य के क्षेत्र को फैलाया । रामायण से ऐसे राज्यादर्श और राजनीतिक विचार ज्ञात होते है जो बाद के शासकों के लिए भी अनुकरणीय और पालनीय कहे जा सकते हैं ।

महाभारत से राज्य संस्था की उत्पत्ति एवं राज्य के आवश्यक अंगों की जानकारी प्राप्त होती है । शांतिपर्व में राजधर्म का विस्तरश: विवरण मिलता है, जिसमें राजा के कर्तव्यों तथा व्यवस्था विषयक विविध अंगों का उल्लेख है ।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र --

अर्थशास्त्र राजशास्त्र का एक मूल ग्रन्थ है । इसमें राजशास्त्र पूर्ववर्ती आचार्यों का भी उल्लेख है । इससे यह संकेत मिलता है कि कौटिल्य के पूर्व से ही राजनीतिक विचारों का एक स्वतन्त्र प्रवाह चलता आ रहा है । कौटिल्य - मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु और प्रधानमंत्री थे । इसमें राज्य के अधिकार और कर्तव्य के साथ अन्यान्य विभागों उसके अधिकारियों तथा राज्य के सप्तांग सिद्धान्त, अमात्य मण्डल, अन्तर्राज्य संबंध विषयक द्वादश मण्डल सिद्धान्त आदि महत्व-पूर्ण प्रसंगों का व्यवस्थित एवं विशद विवेचन उपलब्ध है । सन्धि-विग्रह का सिद्धान्त युद्ध विषयक नीति एवं पद्धति आदि महत्वपूर्ण प्रसंगों की चर्चा भी इस ग्रन्थ में की गयी है

स्मृति - ग्रन्थ --

द्वितीय शताब्दी ई॰पू॰ से द्वितीय शदी ई॰ के मध्य लिखे गये स्मृति ग्रंथ भी राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक विचार के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इस क्रम में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । इनमें विधि सम्मत विचारों का राज्य शासन के प्रसंग में उल्लेख है । स्मृति ग्रन्थों द्वारा दर्शाये गये विधि नियमों का पालन प्राय: प्राचीन भारतीय शासक आवश्यक रूप से करते थे । ये ग्रन्थ भारत के न्याय विधि के स्रोत के रूप में विशेष - महत्त्व के हैं । इनमें राजा के कर्तव्यों, राजकर्मचारियों के कार्य, दण्ड और व्यवहार विधान आदि का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है ।

पुराण --

प्राचीन भारत के धर्म, इतिहास, आख्यान के साथ-साथ राजशास्त्र से सम्बन्धित अन्यान्य प्रसंगों का भण्डार पुराणों में भी उपलब्ध होता है । अग्निपुराण तो राजशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से अधिक समृद्ध है ।

इस प्रकार आभिलेखिक एवं साहित्यिक स्रोतों का सम्यक उपयोग प्रस्तुत अध्ययन में सहयोग लिया गया है जिससे प्रस्तुत अध्ययन अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सका है ।

§ग§ अभिलेखों के प्रकार --

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य आधार अभिलेख कई माध्यमों से मिले हैं । कुछ तो जिज्ञासु पुराविदों के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप यों ही बिना पुरातात्विक उत्खनन के उपलब्ध हो गये और कुछ उत्खननों के द्वारा आलोक में आये । इनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें स्वतंत्र अभिलेख कह सकते हैं और कुछ मुद्राओं, मुहरों, स्मारकों और गुफाओं आदि की भित्तियों पर उत्कीर्णि-त मिले हैं । स्वतंत्र अभिलेख प्राय: शासकों की प्रेरणा और उनके दरबारी विद्वान लेखकों के द्वारा रचित तथा उत्कीर्ण कराये गये इसलिए उनमें सम्बन्धित शासक के शासन काल की राजनीतिक संस्थाओं और तदविषयक राजनीतिक विचार के अध्ययन की दृष्टि से विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं ।

अंग्रेजी भाषा के " इंसक्रिप्शन " का हिन्दी रूपान्तरण अभिलेख है, जिसका अभिप्राय किसी वस्तु पर उत्कीर्ण लेख से ग्रहण किया गया । प्राय: प्राचीन भारत में पाषाण खण्डों, धातु-पत्रों, मिट्टी या लकड़ी के स्तम्भों, मुहरों, प्लेटों, वर्तनों, ईंटों और अन्य बहुमूल्य प्रस्तर खण्डों पर लेख उत्कीर्णित होते रहे हैं । सिक्कों एवं गुफाओं को दीवालों पर भी चित्रित या स्याही से लिखित लेख उपलब्ध होते हैं । राजकीय - मुहरें ताम्रपत्रों पर दान शासन लेख के रूप में मिलते हैं । इस प्रकार के अब तक प्राप्त असंख्य आलेख जो विभिन्न स्थानों, विभिन्न समयों में विभिन्न राजाओं तथा अन्य व्यक्तियों के प्राप्त हुए हैं, जिन्हें अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से वर्गीकृत करना आवश्यक प्रतीत होता है । इसके प्रमुख दो आधार तो स्पष्ट दर्शित होते हैं --

1. उत्कीर्ण सामग्री के आधार पर ।
2. उत्कीर्ण विषय वस्तु के आधार पर ।

जहाँ तक प्रथम आधार का प्रश्न है, इस सन्दर्भ में अनेक दुरूहताएँ है यथा -- मूर्तिलेख से अभिप्राय किसी मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख से है किन्तु मूर्ति काँसा, ताँवा, पीतल, चांदी, सोना, पत्थर, मिट्टी आदि की हो सकती है । ऐसे उत्कीर्ण विषय वस्तु के सन्दर्भ में भी दिक्कते आती हैं । इस क्रम में कतिपय विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण पर भी विचार करना अपेक्षित है । डॉ॰ वासुदेव उपाध्याय[1] ने अभिलेखों के पाँच प्रकार बताया है --

1. धार्मिक लेख -- जैसे अशोक के धर्म लेख ।
2. प्रशंसात्मक लेख -- जैसे यशोधर्मन का मन्दसोर लेख एवं समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति ।
3. स्मारक लेख -- जैसे अशोक का लुम्बिनी लेख ।
4. आज्ञा-पत्र -- दामोदरपुर तथा नालन्दा के ताम्र-पत्र अभिलेख ।
5. दान-पत्र -- वशावर का गुहालेख ।

---

1. प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ॰ 2।

उत्कीर्ण विषय वस्तु को दृष्टिपथ में रखते हुए डॉ॰ राजबली पाण्डेय ने अभिलेखों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया है --

1· व्यापारिक अभिलेख, 2· तांत्रिक अभिलेख, 3· धार्मिक एवं शिक्षात्मक 4· शासन सम्बन्धी अभिलेख, 5· प्रशस्तिपरक अभिलेख· 6· पूजा या समर्पण परक अभिलेख· 7· दान सम्बन्धी अभिलेख· 8· स्मारकीय अभिलेख, 9· साहित्यिक अभिलेख ।

एक अन्य दृष्टि से भी वर्गीकरण किया जा सकता है -- प्रथम वे जो किसी शासक की ओर से उत्कीर्णित कराये गये एवं दूसरा वे अभिलेख जो व्यक्तिगत या किसी सरकारी संगठन की तरफ से उत्कीर्णित कराये गये ।

शासकी अभिलेखों को डॉ॰ दिनेशचन्द्र सरकार ने निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त किया है --

1· राजशासन अभिलेख ।

2· राजा की उपलब्धियों की स्मृति में काव्यात्मक शैली प्रशस्ति परक अभिलेख ।

3· दान शासन अभिलेख । 4· मिश्रित अभिलेख ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के उपलब्ध अभिलेख इतने बहुविध हैं कि एक सुनिश्चित वर्गीकरण के अन्तर्गत उन्हें बाँध पाना बड़ा दुष्कर है ऐसी स्थिति में पृथक-पृथक दृष्टिकोण से ही उन्हें श्रेणी बद्ध करके वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(घ) अभिलेख उत्कीर्णन की आधार सामग्री --

अभिलेख का शाब्दिक अर्थ है कोई लेख जो किसी वस्तु पर उत्कीर्ण हो । इन्हीं अभिलेखों का अध्ययन पुरालेख विद्या कहा जाता है । भारत में शिल्प, धातु, पाषाण तथा लकड़ी के स्तम्भ, पत्र, वर्तन, ईट, कौडी, शंख, हाथी दाँत आदि - वस्तुओं पर खोदे गये एवं ताड़-पत्र, कपड़ा आदि पर लेख लिखे गये हैं ।

1· ताड़-पत्र --

दक्षिण के बौद्ध आगमों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में लेखन सामग्री के रूप में पण्ण {पत्र} सर्वाधिक प्रचलित था । ये पत्र ताड़ पत्र के हुआ करते थे । राजशेखर के काव्य मीमांसा में ताड़ी-पत्र का उल्लेख आया है । डॉ· अ डी·सी· सरकार का अभिमत है कि ताम्रपत्र लिखे गये । लेख पहले मूल लेख ताल पत्र पर तैयार किया जाता था । राजेन्द्रलाल मित्र के अनुसार ताड़पत्र को पहले सुखाया जाता था, फिर पानी में भिगोया जाता था या उसे उबालकर फिर सुखा लिया जाता था । इसके बाद चिकने पत्थर या शंख से घोंटकर चिकना बनाने के बाद निश्चित - आकार काटा जाता था तब उस पर लेख लिखे जाते थे । उत्तर भारत में ताड़पत्र पर रोशनाई से और दक्षिण भारत में स्टाइलस से अक्षर लिखे जाते थे । इसके बाद कालिख या लकड़ी के कोयले से उन्हें काला कर लिया जाता था । काव्यमीमांसा से ज्ञात होता है कि ताड़पत्र और भुर्जपत्र पर कलम और रोशनाई से लिखा जाता था किन्तु तालदल पर लौह कण्टक अर्थात् लोहे की सुई से लिखा जाता था ।

ह्वेनसाँग ने भारत में लिखने के निमित्त ताड़पत्र के प्रयोग का उल्लेख अपने यात्रा वृत्तांत में किया है ।

2· भुर्जपत्र --

भुर्जपत्र भूर्ग नामक वृक्ष की भीतरी छाल है जो हिमालय के क्षेत्र में प्राय: पाया जाता है । कर्टियस से ज्ञात होता है कि सिकन्दर के अभियान के पूर्व लेखन सामग्री के रूप में इसका प्रयोग किया जाता था । अमरकोश एवं कालिदास के कुमारसंभव में ये भी लेखन सामग्री के रूप में भुर्जपत्र का वर्णन आया है । अल्बेरूनी से भी ज्ञात होता है कि भारत के लोग तुज वृक्ष की छाल प्रयोग लिखने के निमित्त करते थे जो भुर्ज ही है ।

3· कपड़ा एवं चमड़ा --

रूई के कपड़े पर जिसे पट या कार्पासिक पट कहा गया है, इसके ऊपर भात अथवा गेहूँ का लेप लगाकर सुखाया जाता था और सूखने के पश्चात कौड़ी

शंख से घिसकर चिकना बनाने के उपरान्त स्याही से लिखा जाता था । चौथी शदी ई॰पू॰ में निर्याकस ने भारतीयों को कपड़े के टुकड़ों पर लिखने की बात का उल्लेख किया है । प्राय: राजस्थान के ज्योतिष विद् इन पर अपना पचांग और कन्नड़ व्यापारी अपनी बहियाँ ऐसे ही लेखन सामग्री पर लिखते थे ।

4· कागज --

लेखन की आधार सामग्री के रूप में कागज का उत्पादन सर्वप्रथम चीनियों के द्वारा 105 ई॰ में किया गया था । डॉ॰ राजबली पाण्डेय का अभिमत है कि नियार्कस ने रुई कूटकर कागज बनाने का वर्णन किया है । राजा भोज के एक उल्लेख से भी मालवा में ग्यारहवीं शदी में कागज के उपयोग की जानकारी प्राप्त होती है ।[1]

5· काष्ठ फलक --

जातक ग्रन्थों में आये सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि लिपिशालाओं में काष्ठ फलकों में प्रयोग किया जाता था । विनय पिटक के अन्तर्गत लेखन सामग्री के रूप में काष्ठ पटिया अथवा बाँस के फलकों का उल्लेख आया है । कात्यायन एवं दण्डिन ने भी काठ की पटिया का उल्लेख पाण्डुलेख के लिखने निमित्त किया है ।[2]

6· पाषाण --

प्राचीन भारत में अभिलेखों के उत्कीर्णन हेतु आधार सामग्री के रूप में पाषाण का उपयोग सर्वाधिक दृष्टिगत होता है । पाषाण का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया गया जो आज भी पुरावशेष के रूप में उपलब्ध है । वस्तुत: हर क्षेत्र के अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी भी सिद्ध होते हैं । पाषाण के प्रयोग के मूल में जो भावना विद्यमान रही वह अशोक के अभिलेखों से दर्शित होता है । मुख्यत: अभिलेख को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से इसे लेखन सामग्री के रूप में प्रयोग किया गया । अशोक कहता है कि -- " इयं धमलिपि लेखिता चिलिथितिक्या होतु तथा च मे पजा अनुवततु ।"[3] अर्थात् इसलिए यह धर्मलिपि लिखवाई गयी है कि चिरस्थायी हो और

1· प्रभातकुमार मजूमदार -- " भारत के प्राचीन अभिलेख ", पृ॰ 16.
2· वही,
3· अशोक का पंचम शिलालेख {कालसी पाठ} ।

मेरी प्रजा इसका अनुसरण करे । पाषाण का उपयोग विभिन्न रूपों में किया गया ।

शिलाखण्ड --

अशोक के समय से इसके प्रयोग का प्रचलन सर्वाधिक दृष्टिगत होता है । अशोक के चतुर्दश मुख्य शिलालेख उसके राज्य की सीमाओं पर स्थित बड़े-बड़े शिला खण्डों पर उत्कीर्ण है । धनदेव का अयोध्या से प्राप्त लेख दरवाजे के ऊपरी प्रस्तर निर्मित चौखट पर उत्कीर्ण प्राप्त है । शक एवं कुषाण राजाओं ने भी अपनी प्रशस्तियों को शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण कर गया । रुद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख, गुप्त सम्राटों की अनेक प्रशस्तियाँ शिलाखण्डों पर प्राप्त होती हैं । यशोधर्मन की प्रशस्ति और ईशानवर्मन का हरहा अभिलेख भी ऐसा ही उदाहरण है ।

स्तम्भ --

भारत में लगभग हर क्षेत्र में पाषाण स्तम्भ पाये गये हैं । कुछ तो बिना लेख के है किन्तु अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भों पर सर्वप्रथम अभिलेख उत्कीर्ण कराये गये । अशोक के रूपनाथ, सारनाथ, लौरिया तथा लुम्बिनी के स्तम्भ तो आज भी अपने उसी स्थान पर खड़े है जहाँ स्थापित किये थे । सभी उत्कीर्णित अभिलेखों से युक्त हैं । कुछ मुस्लिम शासकों के समय में मूल स्थान से हटाकर अन्यत्र स्थापित किये गये हैं जैसे - इलाहाबाद का स्तम्भ जिस पर अशोक एवं समुद्रगुप्त दोनों के लेख उत्कीर्ण हैं । दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में स्थित स्तम्भ मेरठ से लाकर रखा गया है । स्कन्दगुप्त का भीतरी स्तम्भ एवं धर्मध्वज स्तम्भ जैसे बेसनगर का गरुड़ध्वज स्तम्भ भी स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण कराने की श्रृंखला में महत्वपूर्ण उदाहरण है ।

प्रतिमाएँ --

प्रतिमाओं पर लेख उत्कीर्णन का प्रारम्भ बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय के विकास के साथ हुआ । मूर्तियों पर उत्कीर्ण अधिकांश लेख अधिकांशत: उसके आधारशिला पर प्राप्त हुए हैं । कुछ मूर्तियों के पृष्ठभाग पर भी उत्कीर्णित मिले हैं । बोधगया से प्राप्त बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा के आधारशिला पर लेख अंकित है । मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियों पर लेख अंकित है । सारनाथ

से भी लेख युक्त एक बुद्ध प्रतिमा मिली है । गुप्त शासन काल में कुमारगुप्त एवं बुद्ध-गुप्त द्वारा बुद्ध प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण कराये गये लेख मिले हैं । मरमदण्डा से प्राप्त शिवलिङ्ग पर उत्कीर्ण लेख कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल का है । प्राय: प्रतिमाओं की आधार शिला पर उत्कीर्ण लेख प्रतिमा-दान से सम्बन्धित है जिस पर दानदाता के नाम भी अंकित मिलते हैं । परखम तथा पटना से प्राप्त यक्ष प्रतिमाएँ जो पूर्व मौर्य युग की स्वीकार की जाती हैं, लेख युक्त हैं । मथुरा क्षत्रप शासकों ने भी मूर्तियों पर लेख खुदवाये थे । एरण की वाराह मूर्ति पर हूण राजा तोरभान की प्रशस्ति उत्कीर्ण है ।

स्तूप --

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरान्त उनके भष्मावशेष मंजूषा (पात्र) में रखकर स्मारक के रूप में प्रतीक पूजा की दृष्टि से अण्डाकार या अर्द्ध वृत्ताकार स्तूपों का निर्माण प्रारम्भ हुआ । अशोक के सम्बन्ध में परम्पराओं से ज्ञात होता है कि पुराने स्तूप से भस्मावशेष निकालकर चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण कराया । पुरातात्विक उत्खनन एवं अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप ऐसे तमाम स्तूप प्राप्त हुए हैं । स्तूप के बाड़े (रेलिंग) एवं स्तम्भ तथा तोरणद्वार पर अभिलेख उत्कीर्ण मिले हैं । पिपरहवा से प्राप्त पात्र लेख प्रसिद्ध है । भरहुत, साँची एवं अमरावती के स्तूपों से प्राप्त लेख इस परम्परा के प्रमुख उदाहरण हैं ।

गुफा --

भारत में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के भिक्षुओं के निवास हेतु गुफा वास्तुओं के निर्माण की परम्परा प्रचलित रही है । अशोक ने बराबर की गुफाओं का निर्माण कराकर भिक्षुओं को दान दिया था । उस पर लेख उत्कीर्णित है । नासिक, जुनार तथा कार्ले के गुफा लेख इस परम्परा के प्रमुख उदाहरण है । कलिंग राज खारवेल का हाथी गुम्फा अभिलेख तो एक प्रमुख ऐतिहासिक निधि है, जिससे - खारवेल का पूरा इतिहास ज्ञात होता है । चन्द्रगुप्त का उदयगिरि का गुफा लेख भी एक प्रमुख ऐतिहासिक दृष्टांत है । गुप्तकाल में ही अजन्ता की गुफाओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ जो बाद की शादियों में भी सक्रम रहा ।

ताम्र - पत्र --

धातुओं में ताम्रपत्र का लेखन सामग्री के रूप में प्रयोग सर्वाधिक ज्ञात होता है । सोहगौरा का ताम्रपत्र अभिलेख मौर्यकाल में राजाओं को लिखवाये जाने का प्रमुख उदाहरण है । तिरुपति से ऐसे ताम्रपत्र मिले हैं जिन पर साहित्यिक कृतियाँ - उत्कीर्ण है । फाहियान और ह्वेनसांग के विवरण भी ताम्रपत्रों पर लेख उत्कीर्णन को पुष्ट करते हैं । प्राय: दान-शासन अभिलेख के रूप में ताम्र-पत्रों का उपयोग किया जाता रहा । दामोदरपुर का ताम्रपत्र, इन्दौर का स्कन्दगुप्त का ताम्रपत्र भूमि विक्रय और शासन सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्रदान करता है । हर्ष के शासन काल के मधुवन और बाँसखेड़ा के ताम्रपत्र अभिलेख इस परम्परा के अप्रतिम उदाहरण है, जिन पर हर्ष के जीवन एवं घटनाओं का विवरण अंकित है ।

सिक्के --

भारत में यूनानी शासकों के शासन काल से सिक्कों पर लेख उत्कीर्ण कराये जाने लगे । दियोदोतस, यूथिडिमस, मिनेण्डर, डिमेट्रियस आदि के प्राप्त सिक्के लेख युक्त हैं । मालव, योधेय, आर्जुनायन आदि गणराज्यों की मुद्राओं पर भी उनके गणों के नामादि के साथ लेख उत्कीर्ण मिले हैं । कुषाण शासकों में विमकदफिसस ने स्वर्ण मुद्राओं पर लेख लिखवाया । यह परम्परा कनिष्क आदि कुषाण शासकों ने भी सक्रम रखी । इन सिक्कों पर राजाओं के नाम, विरुद एवं उनके धर्म आदि के अंकन हैं । शाक, गुप्त एवं अन्य परवर्ती राजवंशों के शासकों के भी सिक्के लेख युक्त मिलते हैं ।

मुहरें --

धातु के साँचे में ढाले गये मिट्टी की मुहरे मिली है । इन्हें भी लेखन सामग्री के रूप में प्रयोग किया गया । सिन्धु घाटी की मुहरे प्राचीनतम उदाहरण हैं जिन पर लेख अंकित है, यद्यपि कि वे अभी अपठनीय हैं । किन्तु बाद में ऐसे तमाम मुहरें पठनीय लेख से युक्त प्राप्त हुई हैं । वैशाली से प्राप्त मुहरों पर कार्यालय तथा कर्मचारियों के नाम अंकित हैं जैसे -- " तीरभुक्तयुपरिकाधिकरणस्य " अर्थात तीरहुत के राज्यपाल का कार्यालय । चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पत्नी ध्रुवदेवी का

नाम भी हमें मुहरों पर अंकित मिलते हैं । कुछ मुहरे मिट्टी के अतिरिक्त कांस्य, प्रस्तर तथा हाथी-दाँत के निर्मित मिले हैं । उत्तर भारत में वैशाली, नालंदा, राजघाट, कौसाम्बी तथा भीटा आदि से मुहरें प्राप्त हुई हैं ।

ईंट तथा मिट्टी के पात्र --

लेखन सामग्री के रूप में ईंटों तथा मृण्भाण्डों का भी उपयोग प्राचीन भारत में किया गया । ईंट जिन पर लेख अंकित है प्राय: मन्दिर या प्रतिमा के नीचे लगे मिले हैं । कुम्हरहार के उत्खनन से प्राप्त एक पात्र के एक भाग पर गुप्तलिपि में -- " आरोग्य विहारे भिक्षुक संघस्य " लेख उत्कीर्ण मिला है ।

अध्ययन की योजना --

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कुल नौ अध्यायों के अन्तर्गत समाविष्ट है । अध्यायों के क्रम प्रारम्भ होने के पूर्व प्रस्तावना में अध्ययन का उद्देश्य, राजशास्त्र के अध्ययन के स्रोत के रूप में अभिलेखों का महत्त्व, अभिलेखों के प्रकार, अभिलेख उत्कीर्णन की प्रयुक्त आधार सामग्री और अध्ययन की योजना का विस्तरत: विवेचन किया गया है । प्रथम अध्याय - अभिलेखों के प्रतिपाद्य विषय से सम्बद्ध है । अभिलेखों में जो विषय निर्वेचित मिलते हैं उनमें वंशानुक्रम, युद्धगाथा, राज्य सीमा, प्रशस्ति, पदाधिकारियों के पद नाम एवं नामोल्लेख, अर्थव्यवस्था, समाज एवं धर्म उल्लेखनीय हैं । इस अध्ययन के अन्तर्गत आभिलेखिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में उक्त प्रतिपाद्य विषयों का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है । द्वितीय अध्याय - राजपद की उत्पत्ति विषयक चर्चा से संबद्ध है । यद्यपि कि अभिलेख इस प्रकरण पर मुखर नहीं है फिर भी यत्र-तत्र सूत्रवत् सन्दर्भों का साहित्यिक तथ्यों के आलोक में विस्तार देकर अध्ययन का एक प्रयास किया गया है तृतीय अध्याय - में राजा के निर्वाचन एवं राज्याभिषेक संस्कार का अध्ययन किया गया है । इस विषय पर ई॰पू॰ की प्रथम शती से ही अभिलेख निरन्तर विविध घटनाक्रमों के माध्यम से इस पर प्रकाश डालते हैं । वैदिक रीति से सम्पन्न होने वाले राज्याभिषेक संस्कार का उल्लेख तो अभिलेखों में मिलता है किन्तु उसकी विधिक प्रक्रिया का अध्ययन

साहित्यिक स्रोतों के आलोक में किया गया है । राजाओं के निर्वाचन की सुदीर्घ परम्परा का अध्ययन भी आभिलेखिक साक्ष्यों के आधार पर यहाँ गवेषणात्मक ढंग से किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय राजकुमार एवं युवराज की शिक्षा एवं राज्यादर्श के अध्ययन का है । इस प्रकरण पर भी अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा एक गवेषणात्मक दृष्टि प्रस्तुत की गयी है ।

पंचम अध्याय राजा के कर्तव्य एवं अधिकारों के अध्ययन का है ।

षष्ठ अध्याय में राजपद की प्रतिष्ठा एवं उपाधियों का अध्ययन प्रस्तुत है । जिसमें मुख्यत: जिन बिन्दुओं को दृष्टिपथ में लिया गया है, वे हैं -- राजा का देवत्व, राज्य का प्रतीक, पिता एवं प्रजापालक के रूप में राजा, राजा का जन सेवकत्व, राजा का व्यक्तित्व एवं व्रत प्रतिपालकत्व तथा राजकीय उपाधियाँ ।

सप्तम अध्याय - में मंत्रिपरिषद एवं अन्य उच्च पदाधिकारियों का जो सन्दर्भ अभिलेखों में आया है, उनके सम्बद्ध अन्य साक्ष्यों के सहयोग से विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

अष्टम अध्याय - विजय अभियान और राजनीतिक सम्बन्धों के अध्ययन का है ।

नवम अध्याय - त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था - केन्द्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय शासन का विवेचनात्मक अध्ययन से सम्बद्ध है । अन्त में सम्पूर्ण नौ अध्यायों में जिन विषयों का अध्ययन विस्तार से किया गया है उसे उपसंहार शीर्षक के अन्तर्गत - उपसंहारित किया गया है ।